इकाई 5 काव्य एवं नाट्य ग्रन्थों में वास्तु

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 काव्य ग्रन्थों का वास्तुशास्त्रीय आधार

5.3.1 नाट्य ग्रन्थों में वास्तु शास्त्र की उपयोगिता

5.3.2 काव्य एवं नाट्य ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 बोध प्रश्न/ अभ्यास प्रश्न

5.7 सहायक उपयोगी पुस्तकें

5.1 उद्देश्य

हम पूर्व के अध्ययनों में एवं सामान्य व्यवहार में भी यदा-कदा वास्तु के विषय पर परस्पर या चलचित्र अथवा प्रिंट मीडिया के माध्यम से ज्ञान ग्रहण करते रहते हैं। इसी प्रकार से वैदिक काल में श्रुति परम्परा के माध्यम से जन-जन तक इस शास्त्र का प्रचार प्रसार होता रहा है। वैदिक काल के उपरान्त इसी प्रकार से पौराणिक काल में कथा कहानियों के माध्यम से वास्तुशास्त्र का अनवरत विकास निर्बाध रूप से चलता रहा। काव्य ग्रन्थों में कविता या काव्यपाठों के द्वारा भवन, भूमि, स्तम्भ दिशागत सकारात्मकता एवं नकारात्मकता का सम्बन्धित विषयों के आधारस्वरूप काव्य ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार नाट्यशास्त्रों में नाटकों के माध्यम से भित्तिस्तम्भ, राजभवन, रंगमंच की स्थिति, नगर निर्माण, प्रधान द्वारादि की स्थिति के विषय में नाट्य एवं काव्य ग्रन्थों में वर्णन उपलब्ध होते हैं उपर्युक्त विषय को इस इकाई के माध्यम से ज्ञान ग्रहण करवाना ही प्रमुख उद्देश्य है।

5.2 प्रस्तावना

विश्व में भारतवर्ष अपनी संस्कृति के विषय में अपनी अलग पहचान रखता है। भारतवर्ष की संस्कृति विश्व के अन्य देशों के विपरीत अत्यन्त प्राचीन एवं सुदृढ़ थी। जहाँ तक प्राप्त तथ्यों के आधार पर ज्ञात होता है, उनके अनुसार

जब भारतीय लोग आश्रमों एवं गुरुकुलों में शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर रहे थे उस कालखण्ड में अन्य देशों का प्रादुर्भाव भी नहीं हुआ था। भारतीय संस्कृति को ठीक से जानने एवं पहचानने के लिए आपको रामायण काल एवं महाभारत काल को रामायण महाभारतादि महाकाव्यों का अन्वेषण करना होगा। और भी यदि आगे के विषय में बात करें तो वैदिक काल खण्ड का अध्ययन कर लेना चाहिए। वर्तमान काल खण्ड में सुसम्पन्न भारतेत्तर देश अपनी सुदृढ़ता की चर्चा भले ही करते हो लेकिन अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी आदि देश जिनका वर्तमान काल मे भूमण्डल में अपना प्रभुत्व है। यही प्रभुत्वशाली सम्पन्न देशों के द्वारा आज भारतीय सबसे प्राचीन पुस्तक का श्रेय वेद को प्राप्त है। अतः वेद को पढ़ने मात्र से स्वतः ही ज्ञान हो जाएगा कि भारत की संस्कृति उतनी ही प्राचीन है जितना पुराना वेद है वैदिक कालीन वास्तु से सम्बन्धित विषय का अध्ययन हमने पूर्व के अध्यायों में कर लिया है वर्तमान में हम वैदिक कालीन संस्कृति के उपरान्त नाट्य एवं काव्यों के ग्रन्थों के आधार पर वास्तु शास्त्र के विषय में यहाँ अध्ययन करेंगे। वास्तुकला कितनी प्राचीन है और यह कितनी सुदृढ़ थी इस विषय में और अधिक जानने के हेतु से हमें पुरातत्व के अन्वेषणों एवं प्राचीनतम साहित्य के गूढ़ रहस्य को अनुशीलन से ही प्राप्त कर सकते हैं। यदि हम हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की संस्कृति के कालखण्ड के विषय में चर्चा करें तो सिन्धु नदी के समीप निर्मित प्राचीन प्राचीरों का अवलोकन करें तो ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व माना जाता है। इसलिए यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि उतने प्राचीन काल में वास्तु, मूर्तिकला, स्थापत्यकला, लौहवस्तुकला आदि अनेक भौतिक कलायें प्रसिद्ध थी। इसलिए आज वर्तमान काल में सुसभ्य एवं सुसंस्कृत राष्ट्र जिस आधुनिकता के विषय में चर्चा करते हैं या जिन कलाओं के विषय में जानते हैं जैसे वास्तु, मूर्ति, स्थापत्य, भाण्डनिर्माणादि मुख्य कलायें वैदिक युग में पूर्ण रूप से फलित एवं पुष्पित हो चुकी थी। इनको और अधिक प्रमाणिकता के साथ इस प्रकार से जाँचा एवं परखा जा सकता है कि वैदिक कालीन संस्कृति में ये मुख्य कलायें प्रसिद्ध थी। यह वेदों में उन कलाओं से जुड़े विभिन्न सन्दर्भों के उल्लेख से ज्ञात होता है। इसी प्रकार से काव्य ग्रन्थों के विषय में वास्तु शास्त्र का या मूर्तिकला तथा स्थापत्य कला के विषय में आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायण में किष्किन्धा काण्ड के 50वें सर्ग से लेकर 53वें सर्ग में भूगर्भस्थ वर्तमान दुर्ग का अत्यन्त मनोहारी चित्रण प्राप्त होता है। इसी प्रकार से सुन्दरकाण्ड में इस विषय से सम्बन्धित उल्लेखप्राप्त होते हैं। उपर्युक्त समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त हम इस इकाई के माध्यम से करेंगे।

5.3 काव्यग्रन्थों का वास्तुशास्त्रीय आधार

वेदों के छः प्रधान अंग हैं जिनको ठीक से अध्ययन करने के उपरान्त ही वेदों का अध्ययन सम्भव है। इसलिए छः अंगों का जो ठीक से अध्ययन कर लेता है वह वेद को जान लेता है इसलिए वास्तु के उत्तरोत्तर विकास क्रम के लिए हमें वैदिक कालीन वास्तु का अध्ययन करना चाहिए। चूँकि वेदों में स्तम्भों का वर्णन, मूर्तिकला का वर्णन, स्थापत्यकला का वर्णन एवं तत्कालीन आश्रम व्यवस्था पुरव्यवस्था, राजघरानों की निर्माण शैली का चित्रण वैदिक कालीन वास्तु में साहित्य उपलब्ध होता है। परन्तु एसी वास्तुकला को काव्यकारों ने एवं साहित्यकारों ने साहित्यिक दृष्टि से चित्रण किया है वहीं कालान्तर में कथा, कहानियाँ एवं काव्य के रूप में कविता एवं नाट्यकला के माध्यम से समाज में उभरने लगा और पूर्वकालीन ज्ञान को प्राचीन एवं नवीन साहित्यकारों, काव्यकारों द्वारा अलंकारित करके समाज के समक्ष प्रस्तुत किया गया। आदिकवि की संज्ञा महर्षि वाल्मीकि को प्राप्त है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रामायण महाकाव्य में प्राचीन दुर्गों एवं अयोध्या की वास्तुकला का चित्रण बहुत ही मनोहारी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसी क्रम में वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड में 50वें सर्ग से लेकर 53वें सर्ग तक गिरीदुर्ग का चित्रण भूगर्भ में स्थित दुर्ग का चित्रण अत्यन्त रमणीय एवं मनोहारी ढंग से महर्षि द्वारा चित्रित किया है जिसके निर्माण कर्ता मयासुर हैं। मय ने इस दुर्ग का निर्माण अपनी लोकोत्तर शक्तियों द्वारा की थी। सुन्दरकाण्ड में वर्णन उपलब्ध होता है कि लंका में रावण के शासनकाल में निर्मित राजमहल के भवनों की कला शैली अत्यन्त रमणीयता एवं सौन्दर्यता अत्यधिक विलक्षण थी। महाकाव्य की संज्ञा से अलंकारित एवं पञ्चम वेद की उपाधि से सम्मानित महाभारत के सभापर्व के प्रथम अध्याय में वास्तुशास्त्र के पिता विश्वकर्मा एवं मय का वर्णन उपलब्ध होता है। महाभारत में मयासुर एवं विश्वकर्मा के विषय में उल्लेखप्राप्त होता है कि असुर साम्राज्य में जो प्रतिष्ठा आदर एवं सत्कार मय को प्राप्त था वही प्रतिष्ठा देवताओं के मध्य विश्वकर्मा को प्राप्त है। विलक्षण कला सम्पन्न भवन एवं सभागार पाण्डवों के यहां की रचना मय द्वारा ही की गई थी। जिसमें जल के स्थान पर स्थल और स्थल के स्थान पर जल की अनुभूति होती थी तथा द्वार के स्थान पर दीवार दिखाई पड़ती थी। वैसे रामायण महाकाव्य में रावण के सैनिक अथवा विशेष दूत अथवा गुप्तचरों के विषय में ऐसे उल्लेखप्राप्त होते हैं कि देश काल परिस्थिति के अनुसार रूप परिवर्तित करना अथवा मायावी विद्या के द्वारा जल की जगह स्थल को बना देना इत्यादि कलाओं का उल्लेखप्राप्त होता है। मध्यकालीन वास्तुकला में इस प्रकार के उदाहरण प्राप्त होते हैं। मयासुर रावण के श्वसुर थे लेकिन वह एक सर्वश्रेष्ठ

वास्तुविद् एवं स्थापत्यकला के भी उत्कृष्ट विद्वान थे। इसी प्रकार से देवताओं के यहाँ पर श्रेष्ठ एवं अत्युत्कृष्ट कला के धनी आचार्य विश्वकर्मा जी हुए। जिनके आज वास्तु शास्त्र से सम्बन्धित विषय की "विश्वकर्माप्रकाश" एवं मय द्वारा रचित "मयमतम्" उपलब्ध होता है। काव्यग्रन्थों के इतर भी जैसे अथर्ववेद तथा शुल्वसूत्र साहित्य, कौटिल्य का अर्थशास्त्र में अर्थ के साथ-साथ वास्तु कला एवं स्थापत्यकला के विषय में भी साहित्य उपलब्ध होता है। शुक्राचार्य द्वारा रचित ग्रन्थ शुक्रनीति जिसमें राजाओं के लिए शासन को सुचारू रूप से संचालित करने के हेतु से विभिन्न कालों में विभिन्न परिस्थितियों में कौन सी कूटनीति का प्रयोग किया जाता है इससे सम्बन्धित ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ, नगर एवं पुरव्यवस्था, गृह, प्रासाद, भवन हर्म्य, दुर्गों के निर्माण के विषय में भूमिचयन से भवन निर्माण सम्बन्धित ज्ञान-विज्ञान प्राप्त होता है। भरतनाट्यम् जैसे ग्रन्थों नाट्यकला के साथ-साथ भू, भवन, निर्माण, कौशलता, रंगमंचशाला का निर्माण आदि वर्णन नाट्यशास्त्रों में वर्णित है। अष्टादश पुराणों में इसके साथ-साथ आगम ग्रन्थों में जिसमें भुक्ति एवं मुक्ति के विषय में ज्ञान की अजस्रधारा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है परन्तु सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने के लिए गृहादि की आवश्यकता का होना परम आवश्यक है अतः इस दृष्टि से आगम शास्त्र में सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए गृहनिर्माण कला एवं स्थापत्यकला के विषय में विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। शुक्राचार्य द्वारा शुक्रनीति में देवमन्दिर एवं राजप्रासाद के समकक्ष अन्य प्रकार के भवनों के समकक्ष अन्य प्रकार के भवनों की विधियों, नियमों तथा उपनियमों का उल्लेखप्राप्त होता है। इनमें दुर्ग रक्षित नगरों एवं दुर्गों की निर्माण प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। चाणक्य के समय में वास्तुकला विज्ञान ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। पौराणिक काव्य ग्रन्थों में लगभग बारह पुराणों में वास्तुकला सम्बन्धी वर्णन उपलब्ध होता है। मत्स्य पुराण में आठ अध्यायों में वास्तुविद्या का वर्णन मिलता है। गरुड़पुराण में वास्तुविद्या प्रतिपादक अध्याय है। अग्निपुराण में वास्तुविद्या का केवल तीन अध्यायों में वर्णन प्राप्त होता है। भविष्य पुराण में एक अध्याय और विष्णुधर्मोत्तर पुराण में 43 अध्यायों में वास्तुविद्या का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार से प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों ही कालखण्डों में वास्तुविषयक एवं स्थापत्यकला से सम्बन्धित ग्रन्थों का लेखन कार्य होता रहा है।

5.3.1 नाट्य शास्त्र में वास्तु शास्त्र

भरत मुनि द्वारा रचित नाट्य वेद अथवा नाट्यशास्त्र अपने विषय की अद्वितीय रचना है संसार भर में इस विषय से सम्बन्धित एवं परिपूर्ण तथा इतना प्राचीन अन्य कोई ग्रंथ नहीं है अरिस्तौतिली की **"पेरि पोइतिकीस"** की नामक रचना

नाट्यशास्त्र के विषय में यूरोप में आकर सम्मानित है। नाट्यशास्त्र का प्रधान अंग है नाटक के हेतु से रंगमंच। रंगमंच का निर्माण कार्य उसकी लम्बाई–चौड़ाई, स्तम्भों का वर्णन एवं उनमें रंगों का विस्तार वर्णानुक्रम में किया इस विषय से सम्बन्धित समस्त उल्लेख नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में उपलब्ध होता है। द्वितीय अध्याय में भरत के वचनों को सुनकर मुनियों ने कहा कि हे भगवान हम रंग सम्बन्धी यज्ञ का विषय सुनना चाहते हैंयथा–

भारतस्यवचः श्रुत्वा प्रत्यूचुमनियस्ततः।
भगवन् श्रोतुमिच्छामो यजन रंगसश्रयम्।।

नाट्यगृह या नाट्यशाला के विषय में भरतमुनि कहते हैं कि देवताओं और ग्रहों का विषय भिन्न है वहाँ पर अपने मन की इच्छा के अनुसार नाट्यमंच अथवा नाट्यगृहों का निर्माण हो जाता है परन्तु मानवीय लोक में यह सम्भव नहीं है मानवीय लोक में तो इनका निर्माण करना पड़ता है। यहाँ विश्वकर्मा द्वारा दिव्य प्रेक्षागृह (नाट्यगृह) का निर्माण तीन प्रकार का होना चाहिए ऐसा शास्त्र में निश्चित किया गया है। (1)आयताकार (2)वर्गाकार (3)त्रिभुजाकार यथा–

त्रिविधः सन्निवेशश्च शास्त्रतः परिकल्पितः।
विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्रयस्र श्चौव तु मण्डपः।।

उपर्युक्त मण्डप की माप तीन प्रकार की बताई गई है। ज्येष्ठ अर्थात् बड़ी मध्य अर्थात् न बड़ी ना छोटी और हीन अर्थात् दोनों से छोटी। इनकी मापदण्ड और हस्त के हिसाब से बतलाई गई है। 108 हाथ, 64 हाथ और 32 हाथ यह तीन माप हैं। देवताओं का देवताओं का नाट्य गृह अर्थात् 108 हाथ का होना चाहिए और राजाओं का मध्यम अर्थात् 64 हाथ और सामान्य जनों के लिए 32 हाथ का मण्डप होना चाहिए।

शेषाणा प्रकृतीना तु कनीयःसविधीयते।
प्रेक्षा गृहाणा सर्वेषा प्रशस्त मध्यम स्मृतम्।।

अभिनय करने वालों के द्वारा उत्कृष्ट अर्थात् आयताकार, चतुरस्र वर्गाकार चौकोर तथा त्र्यस्र त्रिकोण प्रकार का कहा है। यहाँ पर भी नाट्यवेद का प्रयोग करने के अनुसार आयताकार को सबसे बड़ा तथा वर्गाकार को मध्यम तथा त्रिकोण के आकार वाले को छोटा प्रेक्षागृह निर्माण के लिए उपयुक्त कहा गया है। नाट्यगृहों के माप के विषय में उल्लेखप्राप्त होता है कि हस्तामक एवं दण्डात्मक भेद से निम्नलिखित 18 प्रकार के नाट्यगृह हो सकते हैं। 332 के भेद से।

(1)हस्तप्रमाणज्येष्ठविकृष्ट	(2)हस्तप्रमाणज्येष्ठचतुरस्र
(3)हस्तप्रमाणज्येष्ठत्र्यस्र	(4)दण्डप्रमाणज्येष्ठविकृष्ट
(5)दण्डप्रमाणज्येष्ठचतुरस्र	(6)हस्तप्रमाणज्येष्ठत्र्यस्र
(7)हस्तप्रमाणमध्यविकृष्ट	(8)हस्तप्रमाणमध्यचतुरस्र
(9)हस्तप्रमाणमध्यत्र्यस	(10)दण्डप्रमाणमध्यविकृष्ट
(11)दण्डप्रमाणमध्यचतुरस्र	(12)दण्डप्रमाणमध्यत्र्यस्र
(13)हस्तप्रमाणकनीयस्विकृष्ट	(14)हस्तप्रमाणकनीयस्चतुरस्र
(15)हस्तप्रमाणकनीयस्त्र्यस्र	(16)दण्डप्रमाणकनीयस्विकृष्ट
(17)दण्डप्रमाणकनीयस्चतुरस्र	(18)दण्डप्रमाणकनीयस्त्र्यस्र

विश्वकर्मा द्वारा सब प्रकार के प्रेक्षागृहों का रंगशालाओं का वर्णन किया गया है उनको इस प्रकार से समझो अणु, रज, बाल, लीख (जूं का अण्डा) जूं, जौ, अंगुल, हस्त तथा दण्ड ये नौ उत्तरोत्तर माप की बढ़ती हुई संज्ञायें कही गई हैं। इसी प्रकार प्रेक्षागृह का निर्माण करना चाहिए। यथा–

अनेनैव प्रमाणेन वक्ष्याम्येषा विनिर्णयम्।
चतुः षष्टि करान्कुर्याद्दीर्घत्वेन तु मण्डपम्।।
द्वात्रिंशत् तु विस्तारान्मर्त्याना यो भवेदिह।
अत उर्द्ध न कर्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः।।

इस प्रकार से वास्तुशास्त्र के प्रमाण के अनुसार प्रेक्षागृह का निर्माण प्रारम्भ करें। जो भूमि स्थिर हो कठिन हो तथा रंग में काली हो या गौरवर्ण की हो उसी भूमि पर बनवाने वालों के द्वारा नाट्यमण्डप बनवाना चाहिए। उसको चाहिए कि वह हल जोत कर उसका शोधन करे। हल चलवाकर झाड़ियों का, कीलों खपड़ों को साफ कर दे इस प्रकार से भूमि का शोधन करके नाप का निर्देश करना चाहिए। यथा–

ततो वास्तु प्रमाणेन प्रारभेत शुभेच्छया।
समा स्थिरा तु कठिना कृष्णा गौरी च या भवेत्।।
भूमिस्तत्रैव कर्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः ।
प्रथमं शोधन कृत्वा लाङ्गलेन समुत्कृषेत।।
अस्थिकीलकपालानि तृणगुल्माश्च शोधयेत्।।
शोधयित्वा वसुमति प्रमाणं निर्दिशेत्।।

नाट्य गृह निर्माणारम्भ मुहूर्त-

तीनों उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिरा, विशाखा, रेवती, हस्त, पुष्य और अनुराधा नामक नक्षत्र नाट्यगृह के निर्माण में शुभ होते हैं। यथा-

त्रीण्युत्तराणि सौम्य च विशाखा चापि रेवती।
हस्ततिष्यानुराधाश्च प्रशस्ता नाट्यकर्मणि।।

मध्यविकृष्ट नाट्य गृह निर्माण-

चौसठ हाथ भूमि नापकर उसको दो भागों में बांटे और दो भागों में जो पीछे का भाग है उसके आधे विभाग में रङ्गशीर्ष की रचना करें। तदुपरान्त इसके भी पिछले विभाग में नेपथ्यगृह का विधान करें। यह हस्तप्रमाण वाले नाट्यगृह की रचना का वर्णन है। इसकी कुल लम्बाई 64 हाथ और चौड़ाई 32 हाथ है इसकी लम्बाई को प्रथम दो भागों में बांटा जाता है इसमें अन्तिम 16 हाथ वाले भाग को 8 8 हाथ के दो भागों में विभक्त किया जाता है सबसे पीछे वाला भाग 8 32 वाला भाग नेपथ्यगृह कहलाता है और उससे अग्रिम भाग रङ्गशीर्ष कहलाता है। नेपथ्य रङ्गशीर्ष के पीछे वाले भाग को कहते हैं। जो नटों की वेशभूषा सजाने के लिए प्रयुक्त होता है। इसमें जो कुछ कार्य होता है दर्शकों को दिखाई नहीं देता कभी-कभी वहाँ का परस्पर वार्तालाप सुनाई पड़ सकता है। यथा -

चतुःषष्टि करान्कृत्वा द्विधाकुर्यात्पुनश्चतान्।
पृष्ठतो यो भवेद्भागो द्विधाभूतस्य तस्य तु।।
तस्यार्द्धेन विभागेन रङ्गशीर्ष प्रकल्पयेत्।
पश्चिमेऽथ विभागे च नेपथ्यगृहमादिशेत्त्।।

स्तम्भों का निर्माण एवं स्थापना-

शुभ तिथि, नक्षत्र और योग तथा शुभकरण में स्तम्भों की स्थापना रोहिणी अथवा श्रवण नक्षत्र में की जानी चाहिए यथा-

तिथिनक्षत्रयोगेन शुभेन करणेन च।
स्तम्भानां स्थापनं कार्य रोहिण्या श्रवणेन च।।

स्तम्भों के विषय में वर्णानुक्रम से निर्माण करने के लिए आचार्य भरतमुनि द्वारा उपदिष्ट किया गया है अतः इस हेतु से सर्वप्रथम ब्राह्मण स्तम्भ की स्थापना करनी चाहिए। इसका संस्कार घृत और सरसों से किया जाता है। इस सब में पूजा की विधि श्वेत वर्ण के पुष्पों से की जानी चाहिए। यथा-

प्रथमे ब्राह्मणे स्तम्भे सर्पि सर्षपसंस्कृते।
सर्वशुक्लो विधिः कार्यो दद्यात्पायसमेव च॥

इसके पश्चात् वर्णानुक्रम में क्षत्रियों के स्तम्भ की स्थापना का उल्लेखप्राप्त होता है। क्षत्रियों के स्तम्भ पर वस्त्रमाला और अनुलेपन इत्यादि सभी वस्तुएं लाल रंग की करनी चाहिए और इस अवसर पर ब्राह्मणों को गुड़धानी प्रदान की जानी चाहिए। तथा वैश्य स्तम्भ की स्थापना नाट्यगृह के पश्चिमोत्तर दिग्भाग में होनी चाहिए। इस स्तम्भ की स्थापना के समय सभी विधियाँ पीले रंग की वस्तुओं से की जानी चाहिए और ब्राह्मणों को घृत सहित भात दिया जाना चाहिए। चतुर्थ वर्णक्रम में पूर्व तथा उत्तर दिशा के कोण में स्थित अन्य के स्तम्भ पर ठीक प्रकार से प्रयत्नपूर्वक उपर्युक्त समस्त विधि निर्माण में नीले पुष्पों से की जानी चाहिए और इसके उपलक्ष्य में खिचड़ी ब्राह्मण भोजन में दी जानी चाहिए। यह जो स्तम्भों की स्थापना में विविध वर्णों की व्यवस्था है। वह विविध वर्णों की व्यवस्थाओं की सूचक। है ब्राह्मण वर्ण का स्तम्भ श्वेत वर्ण सात्विकता और ज्ञान का सूचक है। क्षत्रिय वर्ण का लाल स्तम्भ वृत्ति और शौर्य का सूचक है। वैश्य स्तम्भ पीतवर्ण का होने के कारण स्वर्ण का सूचक है जो धन सम्पत्ति की ओर संकेत करता है। नीलवर्ण जिसका सम्बन्ध रुद्र स्तम्भ से है तामस् वृत्ति का द्योतक है। विभिन्न वर्ण एवं जातियों के लिए प्रयुक्त होने वाला वर्ण रूपी स्तम्भ रंग का ही एक पर्याय है मानसार वास्तुशास्त्र से भी विभिन्न जातियों के वास्तुभेद का अनेक स्थानों पर उल्लेखप्राप्त होता है। यथा–

ततश्च क्षत्रियस्तम्भे वस्त्रमाल्यानुलेपनम्।
सर्व रक्त प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च गुडौदनम्॥

वैश्यस्तम्भे विधिः कार्यो दिग्भागे पश्चिमोत्तरे।
सर्व पीतं प्रदातव्य द्विजेभ्यश्च घृतौदनम्।

शुद्रस्तम्भे विधिः कार्यः सम्यक् पूर्वोत्तराश्रये।
नील प्रायं प्रयत्नेन कृशरा च द्विजाशनम्॥

स्तम्भ स्थापना के विषय में कुशल निर्माताओं के द्वारा स्तम्भों के नीचे लोहा स्थापित करना चाहिए। तथा ब्राह्मण भोज में खाने के लिए खिचड़ी दी जानी चाहिए। इस प्रकार से सब विधियों नियमों के अनुसार मत्रवारणी बनाई जानी चाहिए। यहाँ पर मत्रवारणी अथवा मत्रवारणी क्या है इस विषय में जानना चाहिए। मत्रवारण शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है अतः यहाँ पर मत्रवारण शब्द का प्रयोग अट्टालिका, वरण्डा के लिए प्रयुक्त किया जाता है। जैसे–

आयस तत्र दातव्य स्तम्भानां कुशलैधरः।
भोजने कृसरा चौव दातव्या ब्राह्मणाशनम्।।
एवं विविध पुरस्कारैःकर्तव्या मत्रवारणी।

यहाँ पर मत्रवारणी शब्द का अर्थ स्पष्ट प्रतीत नहीं होता है प्रस्तुत प्रकरण में इतना स्पष्ट है कि मत्रवारणी रंगपीठ के पार्श्व में दोनों और होनी चाहिए और स्तम्भों से मुक्त होनी चाहिए। इनकी कुर्सी की ऊँचाई डेढ़ हाथ होनी चाहिए। इससे यह अर्थ स्पष्ट प्रतीत होता है कि मत्रवारणी रंगपीठ के अगल-बगल अर्थात् दोनों ओर वरण्डे होने चाहिए। यथा-

कपोतं प्रस्तरं चौव मञ्च प्रच्छादनम् तथा।
गोपान च वितानं च बलभी मत्रवारणम्।
विधानं च लुपं चौवमेते पार्यायवाचका: ।।

इस रचना के उपरान्त विधि के द्वारा कहे गए कर्मानुसार रंगपीठ का निर्माण किया जाना चाहिए। छः लकड़ी के खम्भों से युक्त रंगशीर्ष बनाया जाना चाहिए। और इसमें नेपथ्यगृह के दो द्वार बनाने चाहिए। रंगशीर्ष को भरने के लिए ढेरों कंकड़ों से रहित तिनकों से रहित की गई काली मिट्टी प्रयत्न पूर्वक डाली जानी चाहिए। हल में श्वेत वर्ण के बैल यत्न पूर्वक जोते जाने चाहिए। तथा वाहक के रूप में ऐसे लोगों को लगाना चाहिए जिनका अंगभंग न हो अर्थात् विकलांग न हो इस प्रकार निर्धारित विधि के अनुसार रंगशीर्ष प्रयत्न पूर्वक बनाया जाना चाहिए। यथा-

रङ्गपीठं ततः कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा।
रङ्गशीर्षं तु कर्तव्य षट्दारुक समन्वितम्।

कार्यं द्वारद्वय चात्रं नेपथ्यगृहकस्य तु।।
पूरजे मृत्तिका चात्र कृष्णा देया प्रयत्नतः।
लाङ्गलेन समुत्कृष्य निर्लोष्टतृण शर्करम्।।

लाङ्गले शुद्धवर्णौ तु धुर्य्यौ योज्यौ प्रयत्नतः।
कर्तारः पुरुषाश्चात्र ये ङ्गदोषविवर्जिताः।।

अहीनाङ्गैश्च वोढव्या मृत्तिका पी वरैर्नरः।
एव विधं प्रकर्तव्यं रङ्गशीर्षप्रयत्नतः ।।

वास्तुशास्त्र सम्मत स्तम्भ स्थापना-

वर्णानुक्रम के अनुसार ही स्तम्भ के लिए आदेश प्राप्त होते हैं। ठीक इसी प्रकार से स्तम्भ प्रयुक्त होने वाली काष्ठ कैसी होनी चाहिए इस इस उद्देश्य से विचार

किया गया है। ब्राह्मण वर्ण के स्तम्भ चन्दन की काष्ठ का और क्षत्रिय वर्ण के लिए खैर का, वैश्य के लिए धाम की लकड़ी प्रयोग करना चाहिए और शूद्र स्तम्भ सभी वृक्षों का कहा गया है स्पष्ट है कि चन्दन का वर्ण सफेद होता है खैर का लाल वर्ण होता है तथा वब का वर्ण पीला होता है। प्राचीन काल में कुछ इस प्रकार का विधान प्रचलित था। इसके विषय में मानसार वास्तुशास्त्र में भी उल्लेखप्राप्त होता है। मानसार का 15वाँ अध्याय तथा 177वाँ श्लोक विशेष रूप से द्रष्टव्य है। उपर्युक्त साक्ष्य के आधार पर यह निश्चित हो जाता है कि प्राचीन काल में स्तम्भ काष्ठ के ही बनते थे। इस प्रकार से नाट्यशास्त्र में वास्तुशास्त्र का विशेष योगदान है। जिसका उल्लेख भरतमुनि रचित नाट्यशास्त्र में मिलता है

कौटिल्य अर्थशास्त्र में वास्तु विचार

वास्तु विन्यास की दृष्टि से कौटिल्य अर्थशास्त्र में वास्तु के विषय में चतुर्थ अध्याय के 22वें प्रकरण में दुर्गनिवेश के विषय में विस्तृत उल्लेखप्राप्त होता है। दुर्ग में राजमार्ग का निर्माण, राजभवन का विन्यास और अमात्य भवन का निर्माण के विषय में विस्तृत रूप से उल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम हम यहाँ पर राजमार्ग निर्माण के विषय में चर्चा करेंगे। राजमार्ग निर्माण के लिए दुर्ग विधान में तीन मार्ग पूर्व से पश्चिम की ओर, और तीन ही मार्ग उत्तर से दक्षिण की ओर होने चाहिए। अर्थात् नगर बसाने के लिए एक स्थान केन्द्र मानकर वहाँ से पूर्व की ओर तीन मार्ग, पश्चिम की ओर तीन मार्ग आमने-सामने ही एक सीध में होवें। इस प्रकार तीन मार्ग उत्तर एवं तीन मार्ग दक्षिण की ओर होने चाहिए। इस प्रकार लम्बे छः भागों में वास्तु अर्थात् गृहनिर्माण के लिए निश्चित भूमि का विभाग करना चाहिए। यथा-

त्रयः प्राचीना राजमार्गास्त्रय उदीचीना इति वास्तुविभागः।

द्वार विधानम्-उपर्युक्त विभागानुसार प्रत्येक दिशा में तीन दरवाजे होने के कारण चारों और कुल मिलाकर बारह दरवाजे होंगे। बारह दरवाजों से युक्त तथा उचित जल भूमि और गुप्त मार्गों से युक्त यह वास्तु विभाग होना चाहिए। **यथा**-

स द्वादश द्वारो युक्तोदकभूमिच्छन्नपथः। चतु र्दण्डान्तरा रथ्याः

मार्ग परिमाप- राजमार्ग, द्रोणमुख अर्थात् चार सौ गाँव का प्रधानभूत केन्द्र, स्थान स्थानीय आठ सौ गाँव का प्रधानभूत केन्द्रस्थान, राष्ट्र तथा चारागाह को जाने का स्थान, व्यापारी एवं मंडियों को जाने का मार्ग, सेना का मार्ग, श्मशान का मार्ग तथा अन्य गांव को जाने का मार्ग यह सभी आठ-आठ दण्ड के चौड़े होने चाहिए। जलाशयों तथा जंगलों का मार्ग भी चार दण्ड चौड़ा होना चाहिए।

हाथियों के चलने का रास्ता तथा खेतों को जाने का रास्ता, दो दण्ड चौड़ा होना चाहिए। पाँच आरत्रि अर्थात् ढाई गज चौड़ा रथों का तथा दो गज चौड़ा पशुओं का रास्ता होना चाहिए। दो अरत्रि अर्थात् एक गज चौड़ा रास्ता मनुष्य तथा भेड़, बकरी आदि छोटे-छोटे पशुओं के लिए होना चाहिए।

राजमार्गद्रोणमुखस्थानीयराष्ट्रविनीतपथः संयानीयव्यूश्मशानग्रामपथाश्चाष्टदण्डाः चतुर्दण्डः सेतुवनपथः । द्विदण्डो हस्तिक्षेत्रपथः । पञ्चारत्नयो रथपथश्चत्वारः पशुपथः । द्वौ क्षुद्र पशुमनुष्यपथः

भवन विभाग-अन्तःपुर के पूर्वोत्तर भाग में आचार्य पुरोहित स्थान यज्ञस्थान तथा जलाशय बनवाए जाएं और मन्त्रियों के निवास स्थान भी इस ओर ही बनवाने चाहिए। पूर्वदक्षिण भाग में महानस अर्थात् रसोई, हस्तिशिला अर्थात् हाथी की पीठ के समान चौरस सभागृह अर्थात हाथियों के रहने की जगह और कोष्ठागार बनवाना चाहिए। **यथा**-

> **तस्य पूर्वोत्तरं भागमाचार्यपुरोहिते ज्यातोयस्थानं मन्त्रिणश्चावसेयुः।**
> **पूर्व दक्षिण भागं महानसं हस्तिशाला कोष्ठागारं च॥**

भवन निर्माण के विषय कौटिल्य द्वारा और भी विस्तृत उल्लेख अर्थशास्त्र में उपलब्ध होता है। पूरब दिशा में इत्र,तेल, घृत, पुष्पहार, अन्न, घी, तेल की दुकानें और प्रधान कारीगरों एवं क्षत्रियों के निवास स्थान होने चाहिए। दक्षिण पूरब में भण्डागार, राजकीय पदार्थो के आय-व्यय का स्थान और सोने-चांदी की दुकानें होनी चाहिए। इसी प्रकार से दक्षिण-पश्चिम में शास्त्रागार तथा सोने-चांदी के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को रखने का स्थान होना चाहिए। उससे दक्षिण दिशा में नगराध्यक्ष, धान्याध्यक्ष, व्यापाराध्यक्ष, खदानों तथा कारखानों के निरीक्षक, सेनाध्यक्ष, भोजनालय, शराब एवं मांस की दुकानें वेश्या, नट और वैश्य आदि के निवास स्थान होने चाहिए। पश्चिम-दक्षिण भाग में ऊंटों एवं गधों के तबेले तथा उनके व्यापार के लिए अस्थाई घर बनवाना चाहिए। पश्चिम-उत्तर की ओर रथ तथा पालकी तथा सवारियों को रखने का स्थान होना चाहिए। उससे आगे पश्चिम दिशा में ही ऊन, सूत, बाँस एवं चमड़े का कारोबार करने वाले हथियार एवं उनके म्यान बनवाने वाले और शूद्र लोगों को बसाया जाना चाहिए। उत्तर-पश्चिम में राजकीय पदार्थों को बेचने खरीदने का बाजार और औषधालय होने चाहिए। उसके आगे उत्तर दिशा की ओर नगर देवता, कुलदेवता, लुहार, मनिहार और ब्राह्मणों के स्थान बनवाए जायें। नगर के चारों ओर छोर जहां खाली जगह छूटी है वहाँ धोबी, दर्जी, जुलाहे और विदेशी व्यापारियों को बसाया जाना चाहिए। **यथोक्तम्**

ततः पर गन्धमाल्यधान्यरसपण्याः प्रधानकारवः क्षत्रियाश्च पूर्वा दिशमधिवसेयुः । दक्षिण पूर्वभागं भाण्डागारमक्षपटलं कर्मनिषद्याश्च। दक्षिणपश्चिम भागं कुप्यगृहयुधागारं च। ततः परं नगरधान्यव्यावहरिक कार्मान्तिकबलाध्यक्षाः पक्वान्नसुरामांसपण्याः रूपाजीवास्तालावचरा वैश्याश्च दक्षिणां दिशमधिवसेयुः। पश्चिम-दक्षिण भागं खरोष्ट्रगुप्तिस्थानं कर्मगृहं च। पश्चिमोत्तर भागं यानरथशालाः। ततः परं ऊर्णासूत्रवेणुचर्मवर्मशस्त्रावरणकारवः शूद्राश्च पश्चिमां दिशमधिवसेयुः। उत्तरपश्चिमं भागं पण्यभैषज्यगृहम्उत्तरपूर्व भागं कोशो गवाश्वं च। ततः परं नगरराजदेवतालोहमणिकारवो ब्राह्मणश्चोत्तरां दिशमधिवसेयुः। वास्तुच्छिद्रानुलासेषु श्रेणीप्रवहणिकनिकाया आवसेयुः।

इस प्रकार से कौटिल्य अर्थशास्त्र में वास्तु के विषय विस्तृत रूप से नगर एवं पुर की संरचना के विषय में वर्णन उपलब्ध होता है।

5.3.2 काव्य ग्रन्थों में वास्तु शास्त्र

रामायण, महाभारत पुराणादि महाकाव्यों में वास्तुशास्त्र विषयक प्रचुर मात्रा में प्रमाण उपलब्ध होते हैं। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण महाकाव्य में दुर्गों का गुफाओं के भीतर की स्थिति एवं रख-रखाव के विषय में एवं लङ्का काण्ड में मयरचित लङ्कापुरी की पुर व्यवस्था, नगर व्यवस्था, द्वार बरामदा स्तम्भों का वर्णन वाटिकाओं का उल्लेख मयासुर द्वारा रचित वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप उल्लेख मिलते हैं। किष्किन्धा काण्ड में किष्किन्धा के विषय में 50 से 53 अध्यायों के मध्य विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। इसी प्रकार से सुन्दरकाण्ड में भी वास्त सम्मत भवनों, दुर्गों, गुफाओं का वर्णन उपलब्ध होता है। श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में हनुमान जी सीता को ढूंढने के दौरान विन्ध्याचल की गुफाओं और दुर्गम स्थानों सघन वन को ढूंढने लगे। यथा-

सत तांग दाभ्यां संगम्य हनुमान्कपिः।
विचिनोति सा विन्धस्य गुहाश्च गहनानि च॥

किष्किन्धा काण्ड के 51वें सर्ग के द्वितीय श्लोक में हनुमान एवं तापसी संवाद में हनुमान तापसी कहते हैं कि हम सब लोग थके माँदे भूखे प्यासे और सब प्रकार से खिन्न होकर सहसा इस अंधकार पूर्ण बिल में चले आये हैं। यथा-

इदं प्रविष्टाः सहसा विलं तिमिरसंवृतम्।
क्षुत्पिपासापरिश्रान्ताः परिखिन्नाश्च सर्वशः॥

हनुमान पुनः यहाँ पर तापसी से प्रश्न करते हैं कि यह पवित्र भोज्य पदार्थ फल मूलादि किसके हैं। यह सोने के सतखने भवन और चांदी घर। यह सोने के गवाक्षों से युक्त हैं। और जिन पर मणियों की पर्दायें पड़ी हैं किसके हैं यह सभी सुवर्णमय फल-फूल युक्त पेड़ जिनकी पवित्र सुगन्ध फैली है।

शुचीन्यभ्यवहार्याणि मूलानि च फलानि च।
काञ्चनानि विमानानि राजतानि गृहाणि च॥

तपनीयगवाक्षाणि मणिजालावृतानि च।
पुष्पिताःफलवन्तश्च पुण्याःसुरभिगन्धिनः ॥

इस प्रकार प्रश्नों के उत्तरों को देती हुई उस तपस्विनी ने हनुमान को उत्तर देते हुए कहने लगी महातेजस्वी मय नाम का एक मायावी श्रेष्ठ दानव था। उसने ही यह सब सुवर्णमय वन अपनी माया के बल से बनाया है। पहले यह दानव मुख्यदानवों का विश्वकर्मा था अर्थात् शिल्पी था। जिसने यह सुवर्णमय दिव्य भवन बनाया है उसने महावन में एक हजार वर्ष तप करके पितामह ब्रह्माजी से यह वर पाया कि शिल्पविद्या सम्बन्धी जो विद्या शुक्राचार्य ने बनाई है उसका समस्त ज्ञान उसको। हो वह महाबली इन वन को बनाकर यहाँ की समस्त भोग्य वस्तुओं का स्वामी हो गया।

यथा-

प्रत्युवाच हनूमन्तं सर्वभूतहिते रता।
मयोनाम महातेजा मायावी दानवर्षभः॥

तेनेदं निर्मितं सर्वं मायया काञ्चनं वनम्।
पुरा दानवमुख्यानां विश्वकर्मा वभूव ह॥

येनेदं काञ्चनं दिव्यं निर्मितं भवनोत्तमम्।
स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने॥

पितामहाद्वरं लेभे सर्वमौनसं धनम्॥
वनं विधाय बलवान्सर्वकामेश्वरस्तदा॥

इस प्रकार से काव्य ग्रन्थों में वास्तु के महान अष्टादश आचार्यों मे मय वास्तुशास्त्री द्वारा निर्मित भवन गृहों का उल्लेखप्राप्त होता है। इसी प्रकार से वास्तुशास्त्र के विषय में अष्टादश पुराणों में गरुड़ पुराण के चौदवें अध्याय में यम एवं यम सभा का वर्णन, चित्रगुप्तादि के भवनों का परिचय का वर्णन उपलब्ध होता है।

हे गरुड़! धर्मराज का नगर नारदादि श्रेष्ठ मुनियों के लिए भी अगम्य है उसके विषय में बताता हूँ। उस दिव्य नगर को महापुण्य से ही प्राप्त किया जा सकता है। दक्षिण दिशा और नैऋत्य कोण के मध्य में जो नगर है वह सम्पूर्ण नगर वज्र का बना हुआ है। दिव्य है तथा असुरों एवं देवताओं के लिए भी अभेद्य है। यह पुर चौकोर, चार द्वारों वाला, ऊँची चाहरदीवारी से घिरा हुआ। एक हजार योजन प्रमाणवाला कहा गया है। उस पुर में चित्रगुप्त का सुन्दर मन्दिर है जो पच्चीस योजन लम्बाई एवं चौड़ाई में फैला हुआ है। उसकी ऊँचाई दश योजन है। और वह लोहे की अत्यन्त दिव्य चाहरदीवारी से घिरा हुआ है। वहाँ आवागमन के लिए सैकड़ों गलियाँ हैं। वह पताकाओं और ध्वजाओं से विभूषित है। वह विमान समूहों से घिरा हुआ है। और गायन-वादन से निर्धारित है। चित्रकारी में निपुण चित्रकारों से चित्रित है तथा देवताओं के शिष्यों ने उसका निर्माण किया है।

"शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यदागम्यं नारदादिभिः।
तद्धर्मनगरं दिव्यं महापुण्यैरवाप्यते याम्यनैर्ऋतयोर्मध्ये पुरं वैवस्वतस्य मत।
सर्व वज्रमयं दिव्यमभेद्यं तत्सुरासुरैः।।

चतुरस्रं चतुर्द्वारमुच्चप्राकार वेष्टितं योजनानां सहस्रं हि प्रमाणेन तदुच्यते।।
तस्मिन् पुरेऽस्ति सुभगं चित्रगुप्तस्य मन्दिरम।
पञ्चविंशतिसंख्याकैर्योजनैर्विस्तृतायताम्।

दशोच्छ्रितं महादिव्यं लोहप्राकारवेष्टितम। प्रतोलीशतसंचारं
पताकाध्वजभूशितम।। विमानगणसंकीर्णं गीतवादित्रनादितम। चित्रितं
चित्रकुशलैर्निर्मितं देवशिल्पिभिः।"

इसी प्रकार से गरुड़ पुराण में चित्रगुप्त के विभिन्न घरों का दिशा के अनुसार निर्मित भवनों का उल्लेखप्राप्त होता है। चित्रगुप्त के घर के पूरब की ओर ज्वर का एक बड़ा विशाल घर है और उनके घर के दक्षिण में शूल, लूता और विस्फोट के घर हैं तथा पश्चिम में कालपाश, अजीर्ण तथा अरुचि के घर हैं। चित्रगुप्त के घर के उत्तर की ओर राजरोग और पाण्डुरोग का घर है ईशानकोण सिरः पीड़ा का और अग्निकोण में मूर्छा का घर है। नैऋत्यकोण में अतिसार का, वायव्य कोण में शीत और दाह का स्थान है। इस प्रकार और भी अन्यान्य व्याधियों से चित्रगुप्त का घर घिरा हुआ है। चित्रगुप्त मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों को लिखते हैं। चित्रगुप्त के भवन से बीस योजन आगे नगर के मध्य भाग में धर्मराज का महादिव्य भवन है वह दिव्य रत्नमय तथा विद्युत की ज्वाला मालाओं से युक्त और सूर्य के समान देदीप्यमान है। वह दो सौ योजन चौड़ा दो सौ योजन लम्बा और पचास योजन ऊँचा है। हजार स्तम्भों पर धारण किया

गया है। वैदूर्यमणि से मण्डित है तथा स्वर्ण से अलंकृत है और अनेक प्रकार के हर्म्य और प्रासाद गृहों से परिपूर्ण है। शरद कालीन मेघ के समान उज्जवल, निर्मल एवं सुवर्ण के बने हुए कलशों से अत्यन्त मनोहर चित्र रंग के स्फटिक से बनी हुई सीढ़ियां हैं और बज्र की कट्टिम से सुशोभित है। गवाक्षों में मोतियों के झालर लगे हैं वह पताकाओं और ध्वजों से विभूषित, घण्टा और नगाड़ों से निनादित सुवर्ण के बने तोरणों से मण्डित हैं। उपर्युक्त उल्लेख गरुड़ पुराण के चौदहवाँ अध्याय के श्लोक 567 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 में वर्णित है। इस प्रकार से काव्यशास्त्र में पुराणों में महाभारतादि ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र के उल्लेखप्राप्त होते हैं।

5.4 सारांश

विश्व की समस्त संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति सबसे प्राचीन एवं सुसभ्य संस्कृति है जिसके प्रमाण हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो (वर्तमान में पाकिस्तान में) के पुरातत्वावशेष से प्राप्त किए जा सकते हैं। विश्व के अन्य राष्ट्र जब तक खान-पान, रहन-सहन, वस्त्र-आभूषण के विषय जानते तक नहीं थे जब भारतवर्ष का रहन-सहन, खान-पान, वस्त्र-आभूषण, शिक्षा-दीक्षा, आचार-विचार, धर्म-धर्म के विषय कहीं परिपक्व एवं विकसित थे। लेकिन अशिक्षा असंस्कार पूर्ण विचारधारा के लोग किसी राष्ट्र की उन्नति एवं तरक्की तथा सम्पन्नता को देखकर प्रायः एक बार नहीं छोटे-बड़े सभी प्रकार के आक्रमण हुए विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा जिस कारण बार-बार इस राष्ट्र पर चोट पहुंचाना और लूटपाट करके भाग जाना इस प्रकार बारम्बार होने के कारणवश भारत की स्थिति विकसित राष्ट्रों की श्रेणी से वर्तमान में विकासशील राष्ट्र के रूप में जानी जाती है। विश्व की सबसे प्राचीन पुस्तक भारत में है जिसमें वर्णित उपर्युक्त आचार-विचार एवं शिक्षा पद्धति को इस पुस्तक में वर्णित किया है जिसको वर्तमान कालिक विकसित राष्ट्रों ने भी यह मान्यता दे डाली है कि विश्व की सबसे प्राचीन पुस्तक वेद है। वैदिक संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है। वेदों में जो दृश्य-अदृश्य रूप में वर्णित है वह सब संसार में है। और जो संसार में नहीं है वह वेदों में नहीं है। ऐसे उल्लेख वैदिकों द्वारा भारतीय प्राचीन इतिहास एवं वैदिक कालीन शिक्षा एवं संस्कृति के इतिहास से हमें प्राप्त होते हैं। यदि पुरातत्त्वावशेषों के आधार पर पुरातत्त्व विभाग के अनुसार भी विचार करें तो सिन्धु नदी के समीप निर्मित प्राचीन प्राचीरों का अवलोकन करें तो ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व इस संस्कृति का कालखण्ड हड़प्पा की संस्कृति के नाम से जाना जाता है। यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि इतने प्राचीन काल में वास्तु, मूर्तिकला, स्थापत्यकला, लौहवास्तुकला आदि अनेक भौतिक कलायें

प्रसिद्ध थी। शिक्षा के क्षेत्र में भारत को अपने ज्ञान–विज्ञान, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, भूगोल एवं खगोल विज्ञान में भारत ने ही समस्त विश्व के राष्ट्रों को यह ज्ञान उपलब्ध कराए थे यहाँ तक कि विदेशी संस्कृति आज जो पल्लवित एवं पुष्पित हो रही है इसका प्रचार–प्रसार करने भारत से ही ईश्वर तुल्य चाहे वह जैनी हो या बौद्ध हो या फिर हिन्दू संस्कृति हो जिसका उल्लेख इतिहास में वर्णित है। वैदिक कालीन संस्कृति के उपरान्त भारतीय न ही तो थके और न ही हारे वह विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमणों से दुःखी व्यथित होते हुए भी शिक्षाविदों द्वारा परम्पराओं के माध्यम से शिक्षा–दीक्षा का कार्य एवं कुल परम्परा के अनुसार ही कण्ठस्थीकरण चलता रहा जिसका परिणाम यह निकला कि आज जब हम पुनः विकासशील राष्ट्रों की श्रेणी में अग्रसारित हो रहे हैं तो आज वह हमारी प्राचीन वैदिक कालीन शिक्षा ही आधार बनी। कालान्तर में काव्यग्रन्थों एवं नाट्यग्रन्थों में भी वास्तुशास्त्रीय शिक्षा का उल्लेख हमें प्राप्त हुआ वह चाहे महाकाव्यों जैसे रामायण महाकाव्य में 50 से 53 सर्ग के मध्य में किष्किन्धा काण्ड में वर्णित दानव मयासुर द्वारा लङ्का निर्माण से लेकर दुर्गों एवं अलौकिक वनों को निर्माण करने का उल्लेख हो महाभारत में मय द्वारा पाण्डवों के गृह का वर्णन जिसमें जल के स्थान पर स्थल और स्थल स्थान पर दीवार दिखाई पड़ना इस प्रकार की वास्तुकला का उल्लेखप्राप्त होता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चतुर्थ अध्याय के 22वें प्रकरण में दुर्ग निवेश के विषय में विस्तृत उल्लेखप्राप्त होता है जिसमें राजभवन, राजमार्ग, अमात्यभवन एवं जन समुदाय के भवनों के निर्माण के लिए वर्णित विषय है। भरतमुनि रचित नाट्यशास्त्र में रंगमंच का निर्माण के विषय में द्वितीय अध्याय में नाटक जिसमें देवनागरी एवं विशेष वर्ग तथा निम्न वर्ग से संबंधित नाटक गृहों का उल्लेखप्राप्त होता है। इस प्रकार से वास्तुशास्त्र का काव्य ग्रन्थों एवं नाट्यग्रन्थों में भी विषय विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है।

5.5 शब्दावली

भारतस्य – भारत के निर्दिशेत– निर्देशित करना

वचः – वाणी

त्रीण्युत्तराणि – तीनों उत्तरा से सम्बन्धित नक्षत्र

श्रुत्वा – सुनकर

सौम्य – मृगशिरा नक्षत्र

श्रोतुम् – सुनना

तिष्य – पुष्य

रङ्गश्रयम- नाट्यशाला

प्रशस्ता - उपयुक्त

त्रिविधः - तीन प्रकार

नाट्यकर्मणि - नृत्य कला में

शास्त्रतः - शास्त्र से

पृष्ठतो - पृष्ठ भाग में

परिकल्पितः - परिकल्पित

तस्यार्द्धेन -उससे आधा

चतुरस्र - चौकोर

प्रकल्पयेत् - कल्पना करें

फ्रयस्र - तिकोना

नेपथ्यगृहम् - रंगमंच का पृष्ठ भाग

मण्डपः- मण्डप

सर्पि -घृत

प्रेक्षा - दृश्य

सर्षप -सरसों

मध्यम - बीच वाला

सर्वशुक्लो -सभी सफेद

कनीयः - छोटा

पायसमेव -दूध ही

विनिर्णयम् -निर्णय करना चाहिए

वस्त्रमाल्यानुलेपनम्- वस्त्र माला का लेपन

चतुःषष्टिः -64 हाथ

द्विजेभ्यश्च - ब्राह्मणों को

दवात्रिंशत् -32 हाथ

गुडौदनम् - गुड एवं भात

दीर्घत्वेन - लम्बाई के

प्रदातव्यं - प्रदान करना

विस्तारान् -चौड़ाई

पश्चिमोत्तरे - पश्चिम एवं उत्तर का मध्यभाग

प्रमाणेन - प्रमाण के द्वारा

घृतौदनम्– घृत एवं भात

शुभेच्छया –अच्छी भावना

द्विजाशनम्– ब्राह्मणों को आसन

शोधन– शुद्धिकरण

आयस - लोहा

कृष्णा –काली

कृसरा– खिचड़ी

गौरी– सफेद

ब्राह्मणाशनम् - भोज खाने के लिए

लाङ्गलेन - हल के द्वारा

मत्रवारणी– अट्टालिका/बरामदा

समुत्कृषेत –खींच कर

विधिदृष्टेन - विधिपूर्वक

अस्थि– हड्डी

शर्करम् –शर्करा

कील– कीलादि

योज्यौ - जोड़कर

कपालानि–खोपड़ी

सर्वभूतहित - सभी जन के हित से

तृण– तिनका

काञ्चन वनम्– सुवर्ण वन

मुल्म –झाड़ियां

दानवमुख्यानां– दानवों के प्रमुख

शोधयेत– शुद्धिकरण

पितामहाद्वरं - ब्रह्मा द्वारा

वसुमति –पृथ्वी

लेभे - प्राप्त किया

तद्धर्मनगरं - उससे आधा नगर

5.6 बोध प्रश्न/ अभ्यास प्रश्न

1- नाट्य शास्त्रों में वास्तुशास्त्रीय पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालें।

2- रामायण में वर्णित वास्तुशास्त्र के विषय में वर्णन करें।

3- महाभारत में वास्तु शास्त्र का उल्लेख वर्णित है इस विषय पर विस्तृत विवेचना करें।

4- रंगमन्च के निर्माण की विधि का उल्लेख करें।

5- नाट्यमन्च के विविध प्रकारों का वर्णन करें।

6- दुर्ग निर्माण का वास्तुशास्त्रीय दृष्टि से उल्लेख करें।

7- काव्य एवं नाट्य ग्रन्थों में वर्णित वास्तु विषयक विषयवस्तु का वर्णन विस्तृत रूप से करें।

5.7 सहायक उपयोगी पुस्तकें

1 कौटलिय अर्थशास्त्र, अमृत प्रैस, अमृतधारा भवन लाहौर, लाला दुर्गादास प्रिंटर अगस्त 1925 में प्रकाशित।

2 सचित्र श्रीमद् वाल्मीकि-रामायण किष्किन्धाकाण्ड 5रामनारायण लाल पब्लिसर और बुक्सेलर इलाहाबाद 1927

3 गरुड़पुराण- सारोद्धार प्रकाशक एवं मुद्रक- गीताप्रेस गोरखपुर 273005

4 नाट्यशास्त्रम्, श्री भरतमुनि प्रणीतम्, प्रकाशक साहित्य निकेतन कानपुर 1954